आत्म-निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत पर आधारित समावेशी शिक्षा

अनिरुद्ध तिवारी*
अखिलेश कुमार**

आत्म-निर्धारण बच्चे अथवा व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय लेने की कला एवं उसके चयन कौशल से संबद्ध है। आत्म-निर्धारण के कौशल की आवश्यकता व्यक्ति को दैनिक जीवन के छोटे-छोटे निर्णयों से लेकर जीवन पर दूरगामी प्रभाव डालने वाले बड़े एवं महत्वपूर्ण निर्णयों तक में पड़ती है और यह व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता का निर्धारक एवं परिचायक भी है। समावेशी शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है— सभी विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाना। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए बच्चे में स्वायत्तता तथा सक्षमता के गुणों का होना आवश्यक है, जिसकी पूर्ति आत्म-निर्धारण के कौशल के विकास से की जा सकती है। आत्म-निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत का समावेशी शिक्षा में उपयोग समस्त विद्यार्थियों के लिए अत्यंत लाभप्रद हो सकता है, परंतु विशेष रूप से दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका उपयोग उनकी व्यक्तिगत शिक्षण योजना के निर्माण, स्व-निर्देशित व्यक्तिगत शिक्षण योजना के निर्माण एवं उनसे संबंधित विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में किया जा सकता है। जो दिव्यांग विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन, आत्म-निर्धारण एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि को उन्नत बनाने में सहायक हो सकती है, साथ ही शिक्षा की विभिन्न जटिलताओं को भी दिव्यांग विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार अनुकूलित किया जा सकता है।

शिक्षा मानव को स्वतंत्र रूप से जीवनयापन की कला सिखाती है, शायद यही वजह रही होगी जिसके कारण भारतीय संविधान में बिना किसी भेदभाव के सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार दिया गया है। बच्चे के अपने विद्यालयी जीवन के साथ-साथ संपूर्ण जीवनकाल में ऐसे अनेक समय आते हैं जब उसे अपने जीवन से संबंधित समस्याओं की प्राथमिकता का क्रम निर्धारित करने और उनके समाधान को लेकर स्वयं निर्णय लेने पड़ते हैं, जैसे— उसे क्या पढ़ना है, आने वाले भविष्य में उसे क्या करना है इत्यादि। वैसी परिस्थितियों में अपने जीवन में एक अनुकूलतम विकल्प के चयन के लिए बच्चे को आत्म-निर्धारण के कौशल की आवश्यकता पड़ती है। आत्म-निर्धारण के कौशल की आवश्यकता व्यक्ति को दैनिक जीवन के छोटे-छोटे निर्णयों से लेकर जीवन पर दूरगामी प्रभाव डालने वाले बड़े एवं

**शोधार्थी* (विशेष शिक्षा), वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान 324 021
***सहायक प्राध्यापक*, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान 324 021

महत्वपूर्ण निर्णयों तक में पड़ती है और यह व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता का निर्धारक एवं परिचायक भी है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अवस्था प्रायः किशोरावस्था की होती है और इस अवस्था में वे स्वयं से संबंधित आकलन और मूल्यांकन करने तथा अपने जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करने में कम परिपक्व होते हैं।

समावेशी शिक्षा में शामिल दिव्यांग विद्यार्थियों को प्रायः अपरिपक्व मानते हुए विभिन्न परिस्थितियों में उनसे संबंधित निर्णयों में उनकी सहभागिता नहीं होती है और उनकी शिक्षा से संबंधित निर्णय विद्यालय स्तर पर एकांगी रूप से विशेषज्ञ शिक्षक या वर्ग शिक्षक एवं घर में माता-पिता के स्तर पर उनकी बिना सहमति के ले लिए जाते हैं।

इससे उनकी आत्म-निर्णय की क्षमता पर जीवन भर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो जीवन की गुणवत्ता को कम कर देता है। इस लेख का उद्देश्य आत्म-निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत तथा समावेशी शिक्षा में शामिल माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में इसकी उपयोगिता के विभिन्न पहलुओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करना है, ताकि सामान्य बच्चों के साथ-साथ दिव्यांग बच्चों की शिक्षा से जुड़े शिक्षक इसका महत्व समझ सकें एवं विद्यार्थियों में आत्म-निर्धारण कौशल के विकास हेतु समुचित उपाय किए जा सकें।

एक मनोवैज्ञानिक संकल्पना के रूप में आत्म-निर्धारण बच्चे अथवा व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय लेने की कला एवं उसके चयन कौशल से संबद्ध है। विहाईमर (2005) के अनुसार, मनोविज्ञान के क्षेत्र में आत्म-निर्धारण का प्रयोग सर्वप्रथम व्यक्तित्व के सिद्धांत में तथा बाद में अभिप्रेरणा के सिद्धांत में किया गया। इन दोनों सिद्धांतों में मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि किसी भी व्यक्ति के व्यवहार के निर्धारण में कुछ आंतरिक एवं बाह्य कारकों का प्रभाव होता है और यही कारक उस बच्चे अथवा व्यक्ति के आत्म-निर्धारण को निरूपित करते हैं, जो उसके व्यवहारों में परिलक्षित होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सर्वप्रथम आत्म-निर्धारण का उल्लेख 1990 में, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में, डिपार्टमेंट ऑफ़ एजुकेशन के ऑफ़िस ऑफ़ स्पेशल एजुकेशन प्रोग्राम द्वारा एतद संबंधित नयी परियोजनाओं के संदर्भ में किया गया था, जिसका उद्देश्य युवा दिव्यांगों में आत्म-निर्धारण की क्षमता का विकास करना था।

नोटा और अन्य (2011) के अनुसार, "आत्म-निर्धारण मनोवैज्ञानिक संकल्पना है, जो किसी व्यक्ति के आत्म-निर्धारित व्यवहार या स्वयं की इच्छा के आधार पर किए जाने वाले स्वैच्छिक कार्य को दर्शाता है और आत्म-निर्धारित व्यवहार इच्छानुरूप सचेत चुनाव और निर्णय से आता है।" जबकि डेसी और रयान (1985) के अनुसार, "आत्म-निर्धारण का तात्पर्य चयन करने की क्षमता और उन चयनित विकल्पों के लिए स्वयं के कार्यों का निर्धारण करना है।" आत्म-निर्धारण की परिभाषा तथा संप्रत्यय, सैद्धांतिक नीतियों के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। जैसे कि आत्म-निर्धारण सिद्धांत के प्रतिपादक डेसी और रयान ने इसे अभिप्रेरणात्मक पहलू से संबंधित बताया है, जो कि किसी भी बच्चे की स्वायत्तता से जुड़ा है

© NCERT not to be republished

और यह अभिप्रेरणा उसके अधिगम तथा शिक्षा को प्रभावित करती है (चिरकोव, 2009)। वहीं दूसरी तरफ़ विहाईमर (2005) ने इसे मानव व्यवहार का अवयव बताया है। विशेष शिक्षा के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों में शोधार्थियों ने दिव्यांग बच्चों के संज्ञानात्मक, सामाजिक और व्यावहारिक अवयवों पर अधिक बल दिया है, जो कि उनके आत्म-निर्धारित व्यवहार के लिए आवश्यक तथा स्वाभाविक लक्षण है। विहाईमर (2005) के अनुसार, आत्म-निर्धारित व्यवहार सक्षम कार्यों के रूप में किसी व्यक्ति के जीवन में प्राथमिक अनौपचारिक अभिकर्ता (एजेंट) के रूप में कार्य करता है और जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखने या बेहतर बनाने में मदद करता है। अतः जो व्यक्ति/बच्चे आत्म-निर्धारण की क्षमता वाले होते हैं, वे अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के प्रति स्वयं पहल करने वाले तथा आत्म-निर्देशित होते हैं। उनकी यह इच्छाशक्ति और स्वायत्त व्यवहार उनके जीवन में निर्णय लेने, चयन करने और सहायक सामाजिक वातावरण बनाने में मदद करते हैं।

यदि समग्र रूप में देखा जाए तो आत्म-निर्धारण का सिद्धांत, मानव अभिप्रेरणा तथा व्यवहार से संबंधित कई उपसिद्धांतों का समूह है, जो सम्मिलित रूप से मानव की अभिप्रेरणा तथा कार्य को समझने में सहायक होते हैं (रयान और डेसी, 2000, पृष्ठ संख्या 68)। यह सिद्धांत मौलिक मानवतावादी धारणा पर आधारित है, जो व्यक्तियों में आत्म-संगठन और विकास में स्व-नियोजित तथा स्वाभाविक रूप से कार्य करता है। साधारण शब्दों में कहें तो प्रत्येक मनुष्य स्वयं को समझने का प्रयास करता है और इसकी पूर्ति के लिए वह अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुरूप व्यक्ति, समुदाय अथवा समाज से जुड़ता है, तब उस परिस्थिति में वह अपने नए-नए अनुभवों को संगठित करता है। आत्म-निर्धारण सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि आत्म-निर्धारण की क्षमता, मानव के स्वाभाविक विकास का एक गुण है। इसी वजह से मनुष्य जब दोषपूर्ण सामाजिक परिवेश से गुज़रता है तो वह अपनी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं, स्वायत्तता, क्षमता और संबद्धता को आवश्यकतानुसार नियंत्रित, विभाजित और संगठित कर पाता है। संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत, आत्म-निर्धारण सिद्धांत के प्रमुख आधारभूत अवयवों में से एक है।

संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत

किसी भी व्यक्ति के जीवन में आंतरिक और बाह्य घटनाएँ उसकी स्वाभाविक अभिप्रेरणा को कैसे प्रभावित करती हैं, इसकी व्याख्या संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत में की गई है। आतंरिक अभिप्रेरणा से तात्पर्य, आनंद और अभिरुचि के कारण गतिविधियों में जुड़ाव से है, जबकि बाह्य अभिप्रेरणा में प्राप्त परिणाम तथा प्रोत्साहन व्यक्ति के व्यवहार के साथ जुड़े होते हैं। आंतरिक अभिप्रेरणा की प्रवृत्ति गैर-नैमित्तिक (नॉन-कैजुअल) होती है। जब कोई व्यक्ति किसी कार्य के प्रति आंतरिक रूप से अभिप्रेरित होता है, तो उस कार्य के सकारात्मक या नकारात्मक परिणाम उसे प्रभावित नहीं करते हैं, बल्कि उसके प्रदर्शित व्यवहार ज़्यादा स्वाभाविक तथा संतोषप्रद होते हैं। इसके विपरीत, बाह्य अभिप्रेरणा मूलतः नैमित्तिक (कैजुअल) होती है

© NCERT not to be republished

तथा बाह्य अभिप्रेरित व्यक्ति द्वारा किए गए कार्य का संबंध हमेशा ही उसके प्राप्त परिणामों पर निर्भर करता है। संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत के अनुसार, आंतरिक अभिप्रेरणा को बढ़ाया या कम किया जा सकता है। यह व्यक्ति से संबंधित बाह्य घटनाएँ (ईनाम, दण्ड आदि), पारस्परिक संदर्भ (आलोचना, प्रशंसा आदि), आतंरिक झुकाव तथा स्वायत्तता और क्षमता के व्यक्तिगत आत्मबोध की श्रेणी पर निर्भर करती हैं। किसी क्रिया में आत्म-निर्देशन तथा आत्म-समर्थन का अनुभव करने के लिए स्वायत्तता की सहज आवश्यकता होती है, इसके विपरीत इसकी आवश्यकता अनुभूति, विवशता, मजबूरी इत्यादि को नियंत्रित करने में भी होती है।

किसी कार्य की प्रभावी परिपूर्णता के लिए सक्षमता की ज़रूरत होती है, जो कि व्यक्ति को इच्छित परिणामों को प्राप्त करने में सहायक होती है। सक्षमता व्यक्ति को सर्वोत्तम चुनौती से बाहर निकलने तथा क्षमता के विकास में मदद करती है। जब व्यक्ति की बाह्य, सामाजिक, पारस्परिक और आंतरिक स्थिति स्वायत्तता और सक्षमता के लिए प्रोत्साहित करती है, तब उस व्यक्ति कि आंतरिक अभिप्रेरणा बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब स्वायत्तता को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है (घूस, अनुरोध, दबाव इत्यादि द्वारा) या फिर व्यक्ति की क्षमता का कम आकलन करके उसे हानि पहुँचाई जाती है अथवा उसे उपेक्षित रखा जाता है, तब उसकी आंतरिक अभिप्रेरणा कम हो जाती है।

संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत पर किए गए शोधों से ज्ञात होता है कि स्वायत्तता को कम महत्व देकर, जब किसी कार्य हेतु बाह्य अभिप्रेरकों का प्रयोग अधिक किया जाता है, तो आंतरिक अभिप्रेरणा के विकास में बाधा उत्पन्न होती है (डेसी, 1971, पृष्ठ संख्या 105–115)। इसी प्रकार अन्य बाह्य घटनाएँ, जैसे— समय-सीमा और निगरानी का प्रयोग अधिक किया जाता है तो भी आंतरिक अभिप्रेरणा का विकास बाधित होता है (ऐम्बिल, 1976, पृष्ठ संख्या 92 और प्लांट और रयान, 1985, पृष्ठ संख्या 435–449)। पारस्परिक संबंध भी आंतरिक अभिप्रेरणा को प्रभावित करता है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि यह संबंध सामान्य सूचनार्थ है या फिर नियंत्रण स्थापित करने के लिए (रयान, 1982, पृष्ठ संख्या 450–461)। व्यक्ति की आंतरिक अभिप्रेरणा, जैसे— व्यक्ति की खुद की आंतरिक धारणाएँ, संज्ञान तथा भावनाएँ भी उसके व्यवहार को प्रभावित कर सकती हैं अर्थात् जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को करते हुए जुनूनी या अहंकारी हो जाता है, तो उसका आत्मसम्मान उसके साथ मिलकर उसको और बढ़ाने का काम करता है, परंतु जब उसी कार्य के साथ उसका आत्म-मूल्य या पहचान जुड़ा होता है, तब उसका व्यवहार प्रशंसनीय तथा मूल्यवान हो जाता है, परिणामस्वरूप उसका व्यवहार नियंत्रित हो जाता है (मैग्यू, 2009, 601–646; प्लांट और रयान, 1985, पृष्ठ संख्या 435–449)। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति की आंतरिक अभिप्रेरणा को बाह्य बल, पारस्परिक वातावरण और आंतरिक घटनाएँ प्रभावित करती हैं, जो प्रकारांतर से व्यक्ति के आत्म-निर्धारण की क्षमता एवं जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

विद्यालय समाज का संकुचित रूप है, जिसमें विभिन्न वर्गों, समुदायों तथा परिवारों के बच्चे

आते हैं, जो सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। साथ ही, इन बच्चों में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ होती हैं, जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुणों के रूप में परिलक्षित होती हैं। इसी प्रकार, वे बच्चे जो शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक रूप से सामान्य बच्चों से भिन्न होते हैं, उन्हें दिव्यांग बालक कहा जाता है। दिव्यांग बालकों को परिभाषित करते हुए क्रिक (1962) ने कहा है कि "विशिष्ट बच्चे मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बच्चों से भिन्न होते हैं। उनकी भिन्नता कुछ इस सीमा तक होती है कि उन्हें स्कूल के सामान्य कार्यों में विशिष्ट शिक्षा सेवाओं की आवश्यकता होती है। ऐसे बच्चों के लिए अतिरिक्त अनुदेशन की भी आवश्यकता होती है। इस भिन्नता का प्रभाव उनकी शिक्षा ग्रहण करने की प्रकिया पर भी पड़ता है, परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएँ भी सामान्य बच्चों से अलग होती हैं, साथ ही इन बच्चों को विशेष अनुदेशन की आवश्यकता होती है।

दिव्यांग बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण उस बच्चे में व्याप्त क्रियाशील तथा अक्रियाशील क्षमताओं के आधार पर किया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि दिव्यांग बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएँ उनकी व्यक्तिगत क्षमताओं के अनुरूप होती हैं, जो उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में मदद करती हैं। फिर भी, दिव्यांग बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को इस प्रकार बाँटा जा सकता है, जैसे— (1) भौतिक शैक्षिक आवश्यकता अर्थात् बाधारहित वातावरण; (2) संवेदना या प्रत्यक्षण संबंधित शैक्षिक आवश्यकता अर्थात् ब्रेल लिपि या प्रतीक चिह्न; (3) मनोवैज्ञानिक शैक्षिक आवश्यकता अर्थात् सकारात्मक विचार, अभिप्रेरणा, आत्म-मूल्यांकन; (4) अधिगम प्रकिया के लिए विशिष्ट अनुदेशन तथा अनुदेशनकर्ता अर्थात् विशेष शिक्षक, बहुसंवेदी उपागमों का प्रयोग इत्यादि। इन शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके दिव्यांग बच्चों को भी शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

सामान्य बच्चों के समान ही दिव्यांग बच्चों को भी बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है (दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, अध्याय 3)। दिव्यांग भी शिक्षा प्राप्त कर अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति कुशलतापूर्वक कर समाज में अपना योगदान दे सकेंगे तथा समाज के उत्पादक अंग बनकर जीवनयापन कर सकेंगे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली बाल-केंद्रित हो गई है, इस कारण शिक्षा में समावेशी शिक्षा पर ज़्यादा बल दिया जा रहा है। समावेशी शिक्षा के अंतर्गत सामान्य बच्चों के साथ दिव्यांग बच्चों को भी उनकी विशिष्टताओं के अनुरूप शामिल कर शिक्षा प्रदान करने पर ज़ोर दिया जाता है। समावेशी शिक्षा को परिभाषित करते हुए दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, अध्याय 1 में कहा गया है कि, "समावेशी शिक्षा से ऐसी शिक्षापद्धति अभिप्रेत है, जिसमें दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थी एक साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं, तथा शिक्षण और अधिगम की पद्धति विभिन्न प्रकार के दिव्यांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुकूलित की गयी है।"

© NCERT not to be republished

जैसा कि उपरोक्त परिभाषा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह शिक्षा पद्धति दिव्यांग तथा सामान्य, दोनों प्रकार के बच्चों को सामान रूप से ध्यान में रखकर संगठित की गई है। इसमें विभिन्न प्रकार के बच्चों को एक-साथ एक विद्यालय प्रांगण में, उनकी योग्यताओं के अनुरूप सिखाया जा सके। अगर देखा जाए तो सामान्य बच्चों की जो आवश्यकताएँ हैं, वह आवश्यकताएँ दिव्यांग बच्चों की भी हो सकती हैं, परंतु उनकी दिव्यांगता के कारण कुछ विशेष आवश्यकता भी होती है, जैसे—भौतिक शैक्षिक आवश्यकताओं (कक्षा-कक्ष, विद्यालयी वातावरण इत्यादि) की ज़रूरत समस्त बच्चों को होती है। अनेक अनुसंधानों द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि यदि बच्चों को सिखाने के दौरान बहु-संवेदी उपागमों का प्रयोग किया जाए तो उनके सीखने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, अतः जिन बहु-संवेदी उपागमों का प्रयोग दिव्यांग बच्चों के लिए किया जाता है, वह सामान्य बच्चों के लिए भी सामान रूप से लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। यही कारण है कि आजकल विद्यालयों में पाठ सीखने-सिखाने के क्रम में दृश्य-श्रव्य शिक्षण-अधिगम सामग्री के उपयोग पर बल दिया जाता है।

सीखने की प्रकिया मनोवैज्ञानिक होती है और बच्चों को सफलतापूर्वक सिखाने के लिए सीखने से संबंधित मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं (अभिप्रेरणा, अभिरुचि, प्रोत्साहन, पुनर्बलन इत्यादि) की पूर्ति करना आवश्यक है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सीखने-सिखाने के दौरान बच्चों की आवश्यकताएँ लगभग एक-सी होती हैं, परंतु उसके स्वरूप, प्रदर्शन तथा प्रस्तुतीकरण के ढंग में अंतर हो सकता है। अतः कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा में प्रयुक्त होने वाली शैक्षिक गतिविधियाँ दिव्यांग और सामान्य, दोनों प्रकार के बच्चों के लिए सहायक होती हैं।

शिक्षा पद्धति का मुख्य केंद्र विद्यार्थी है, अतः उसका सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। जो विद्यार्थी आतंरिक रूप से सीखने के लिए प्रेरित होते हैं, उनके सीखने की क्षमता तथा शैक्षिक उपलब्धि अन्य विद्यार्थियों की तुलना में उच्च होती है। आंतरिक रूप से अभिप्रेरित विद्यार्थी अपने निर्धारित कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करता है तो उसे संतुष्टि तथा खुशी प्राप्त होती है, जो उसके आत्मविश्वास और आत्म-निर्धारण की क्षमता को उन्नत बनाता है। स्वायत्तता से अभिप्रेरित विद्यार्थी अपने अध्ययन पर ज़्यादा मेहनत करता है तथा वह कक्षा-कक्ष में भी अध्ययन के दौरान ज़्यादा ध्यान देता है (वंस्टीन्किस्ते एवं अन्य, 2004, पृष्ठ संख्या 246–260)। संभवतः इसी कारण डेसी और रयान (1985, पृष्ठ संख्या 11) ने अपने सिद्धांत में आत्म-निर्धारण को आंतरिक रूप से अभिप्रेरित व्यवहारों का रूप तथा एक व्यक्ति के प्रदर्शन में योगदान देने वाली आंतरिक आवश्यकता बताया है। उन्होंने कहा कि बच्चे सहजता से सीखना, चुनौतियों का सामना करना और समस्याओं को हल करना चाहते हैं, जिसे उन्होंने आतंरिक अभिप्रेरित व्यवहार की संज्ञा दी है तथा उनका मानना है कि आतंरिक अभिप्रेरणा ऊर्जा स्रोत है, जो जीव की सक्रिय प्रकृति के लिए केन्द्रीय भूमिका निभाती है। इस प्रकार

© NCERT not to be republished

आत्म-निर्धारण कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों की शिक्षा संबंधी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को समझने के साथ-साथ शिक्षक को अपनी योजना बनाने में सहायक होता है।

प्रत्येक विद्यार्थी को अपने शैक्षिक वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अगर बच्चा दिव्यांग हो तो इन चुनौतियों का स्वरूप और अधिक मुखर हो जाता है। आत्म-निर्धारण कौशल विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करने हेतु समर्थ बनाता है। आत्म-निर्धारण कौशल वस्तुतः अर्जित कौशल, ज्ञान तथा विश्वास का सम्मिलित स्वरूप होता है, जो किसी व्यक्ति को लक्ष्य-निर्देशित, आत्म-नियंत्रित एवं स्वायत्तता पूर्ण व्यावहारिक कार्य करने के लिए योग्य बनाता है। विद्यार्थियों में आत्म-निर्धारित गुणों के विकास हेतु कई प्रारूप विकसित किए गए हैं, जिसके आधार पर विद्यार्थियों में आत्म-निर्धारित गुणों का विकास किया जा सकता है। इन गुणों के साथ-साथ उनमें आत्म-नियंत्रण, स्वायत्तता, सशक्तिकरण, स्व-वकालत, समस्या-समाधान जैसे गुणों का भी विकास किया जा सकता है (विहाईमर, 2000 और डेसी और रयान, 1985)। बच्चों में विकसित ये गुण उनके शैक्षिक वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने, शैक्षिक चुनौतियों का सामना करने, सीखने में आत्म-अभिप्रेरित होने, अपनी रुचि तथा क्षमता के अनुरूप लक्ष्य निर्धारित करने तथा प्राप्त करने के साथ-साथ भविष्य में आने वाली कठिनाइयों से भी निपटने के योग्य बनाते हैं।

आत्म-निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत का समावेशी शिक्षा में उपयोग

शिक्षा प्रत्येक बच्चे का अधिकार है और स्वावलंबन शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य है। विद्यार्थियों में स्वावलंबन विकसित करने हेतु उनमें स्व-निर्धारण की क्षमता का विकास अत्यंत आवश्यक है और यदि दिव्यांग हो तो इस क्षमता का विकास और भी आवश्यक हो जाता है। इस सिद्धांत का उपयोग बच्चों के लिए विकासात्मक परीक्षणों में, दिव्यांग बच्चों हेतु हस्तक्षेप की प्रकिया में, स्व-अध्ययन के लिए प्रेरित करने में, पाठ्य-सहायक सामग्री के निर्माण में तथा अनुदेशन प्रारूपों को तैयार करने में किया गया।, जिसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए। दिव्यांगता एवं पुनर्वास के क्षेत्र में आत्म-निर्धारण को दिव्यांगता सहायक सेवाओं और वकालत, स्व-वकालत क्षमता विकसित करने एवं सशक्तिकरण हेतु बहुतायत में प्रयोग किया जाता है (फील्ड और हाफ़मैन, 1994 मार्टिन और मार्शल, 2004 विहाईमर, 1996)। अनेक शोधार्थियों ने इस बात को प्रमाणित किया है कि स्वायत्तता, सक्षमता और संबद्धता प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ हैं, जिसे संतुष्ट करने वाले प्रसंग, सकारात्मक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं (रयान और डेसी, 2000)। माध्यमिक स्तरीय बच्चों में स्वायत्तता की इच्छा तीव्र होती है तथा वे स्वयं को सक्षम भी मानते हैं, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसे में बच्चे की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि और संबद्धता से संबंधित कौशल तथा उनका उचित प्रयोग करना होगा। आधारभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर हुए शोधों से ज्ञात

© NCERT not to be republished

हुआ है कि मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा सुखी कुशल-क्षेम सूचकांक के बीच मज़बूत संबंध है अर्थात् मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के माध्यम से बच्चे की न केवल शैक्षिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं को, बल्कि उसके बाद के जीवन को भी उत्तम बनाया जा सकता है। समावेशी विद्यालय में इन सिद्धांतों के आलोक में निम्नांकित नवाचारों को सम्मिलित किया जा सकता है, ताकि सामान्य तथा दिव्यांग विद्यार्थियों में आत्म-निर्धारण की क्षमता का विकास किया जा सके और उन्हें स्वावलंबी बनाया जा सके।

आत्म-निर्धारित अधिगम

आत्म-निर्धारित अधिगम का तात्पर्य उस अधिगम से है, जिसमें विद्यार्थी अपना अधिगम स्वैच्छिक रूप से, स्व-विनियमित होकर, मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण के साथ तथा स्व-साकार तरीके से करता हो। यह इस बात पर बल देता है कि अपने जीवन-काल में या स्व-विनियमित समस्या-समाधान की प्रकिया में, विद्यार्थी की भूमिका केंद्रीय प्रतिनिधि के रूप में हो। आत्म-निर्धारित अधिगम में, विद्यार्थियों को अधिगम कार्य का चयन करने, लक्ष्य निर्धारित करने, लक्ष्यों को समायोजित करने तथा उनकी स्वयं की भागीदारी एवं प्रगति के मूल्यांकन के लिए कार्यात्मक योजना तैयार करना होता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में आत्म-निर्धारित अधिगम को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ही विद्यार्थी-निर्देशित अधिगम की बात की गई है। विद्यार्थी-निर्देशित अधिगम का तात्पर्य विद्यार्थियों को ऐसी रणनीतियाँ सिखाने से है, जो उन्हें अपने स्वयं के व्यवहार को संशोधित करने व विनियमित करने में और स्वयं को सीखने हेतु निर्देशित करने में सक्षम बनाता हो (आग्रान, किंग-सियर्स, विहाईमर, कोपलैंड, 2003)। इस अधिगम प्रकिया में अनुदेशन प्रकिया के साथ-साथ अधिकतम संभव सीमा तक विद्यार्थी की सक्रिय सहभागिता होती है तथा स्वयं के शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का उत्तरदायित्व होता है। इस प्रकार के कार्यों द्वारा विद्यार्थी को स्वयं अपनी रुचि, योग्यता, संज्ञानात्मक स्तर, योजना निर्माण की कला इत्यादि का पता लगता है, साथ ही वह इन सबका स्वयं मूल्यांकन भी करता है, जिस वजह से उसमें सुधार की संभावना भी प्रबल होती है। विद्यार्थी जब इन गतिविधियों में प्रवीणता प्राप्त कर लेता है तो उसे भावी जीवन की समस्याओं का समाधान करने में आसानी होती है।

आत्म-निर्धारित अधिगम के लिए रचनात्मक अधिगम तथा सहकारी शिक्षण विधि का उपयोग किया जा सकता है। रचनात्मक अधिगम में अधिगमकर्ता का ज्ञान निर्माण उसके पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है। विद्यार्थी प्रस्तुत गतिविधियों या वस्तुओं में सक्रिय रूप से अपने पूर्व ज्ञान को जोड़कर नए ज्ञान का सृजन करता है। जबकि सहकारी अधिगम एक ऐसी अधिगम प्रक्रिया है, जिसमें एक समान योग्यता वाले बच्चे समूह बनाकर एक ही उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। वे समस्याओं के समाधान एवं कार्य संपादन में, एक-दूसरे के पूरक बनते हैं तथा एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। सहकारी शिक्षण शिक्षार्थियों को शैक्षिक योग्यता के साथ-साथ उनकी दक्षता को भी विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है, जैसे— सुनना, प्रश्न पूछना, उत्तर देना, प्रश्नों को

© NCERT not to be republished

हल करने में सुझाव देना, एक-दूसरे की मदद करना इत्यादि। अधिगम के इन दोनों प्रारूपों में शिक्षक की भूमिका गौण तथा विद्यार्थी की भूमिका प्राथमिक होती है। शिक्षक, विद्यार्थी के समक्ष प्रश्न पैदा करता है तथा विद्यार्थी की जवाब तलाश करने की संपूर्ण प्रकिया का निरीक्षण करता है, जैसे— त्रिकोणमिति के प्रश्नों को हल करते समय अमूनन यह देखा गया है कि एक सवाल के अंतर्गत, एक ही चरण में, अनेक सूत्रों का उपयोग किया जा सकता है, जिनका परिणाम भी सार्थक निकलता है। वैसी परिस्थिति में शिक्षक अलग-अलग विद्यार्थी दलों का निर्माण करके उन्हें अलग-अलग सूत्रों के आधार पर (जिसका पूर्व ज्ञान उन्हें है) सवाल को हल करने की ज़िम्मेदारी दे सकता है तथा स्वयं वह निर्देशन तथा निरीक्षक का कार्य कर सकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कहा गया है कि ज्ञान विद्यार्थी की क्रियाशीलता का परिणाम होता है। ऐसी अधिगम प्रकिया को अपनाने पर बल दिया गया है जिसमें शिक्षार्थी सक्रिय रूप से अपने ज्ञान का विकास तथा क्षमताओं का विकास कर सके। आत्म-निर्धारित अधिगम में संज्ञानात्मक प्रशिक्षण, विद्यार्थियों में उच्चस्तरीय कौशल को विकसित करने की रचनावादी प्रविधि है, जिसमें तीन तरह की क्रियाएँ प्रेक्षण, प्रशिक्षण और अभ्यास का उपयोग होता है। आत्म-निर्धारित अधिगम के लिए यह आवश्यक होता है कि शिक्षक शिक्षार्थी को स्वतंत्रता प्रदान करे, साथ ही साथ उसे पहल करने के लिए प्रोत्साहित करे, शिक्षार्थी के सामने अपने आस-पास की वस्तुओं का प्रयोग अवर्गीकृत आँकड़ों के रूप में या प्राथमिक आँकड़ों के रूप में इस प्रकार करें कि शिक्षार्थी को नए ज्ञान का सृजन करने में आसानी हो। समाज तथा शिक्षण संस्थानों की भूमिका यह हो कि वे शिक्षार्थी को अधिक से अधिक स्वतंत्र तथा रचनात्मक अधिगम वातावरण प्रदान करें। रचनात्मक अधिगम वातावरण का तात्पर्य ऐसे वातावरण से है, जो बच्चों में स्वयं अर्थ निर्माण तथा समझ के विकास को सुगम बनाए। इसके अतिरिक्त दिव्यांग बच्चों को ध्यान में रखकर निम्न कार्य किए जा सकते हैं —

व्यक्तिगत शिक्षण योजना निर्माण की प्रक्रिया में दिव्यांग विद्यार्थी की सहभागिता सुनिश्चित करना

आई.डी.ई.ए. एक्ट, 2004 यह सुनिश्चित करता है कि यथासंभव दिव्यांग बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ ही शिक्षा दी जाए तथा उन्हें इस योग्य बनाया जाए कि वे सामान्य बच्चों के साथ आसानी से शिक्षण अथवा विद्यालय संबंधित गतिविधियों में शामिल हो सकें। वर्तमान भारतीय परिस्थिति में बच्चों की विशेषताओं को ध्यान में रखकर व्यक्तिगत शिक्षण योजना की प्रकिया में दिव्यांग बच्चों का मत नहीं लिया जाता है और न ही उन्हें शामिल किया जाता है, बल्कि विशेषज्ञों के निर्णयों को उन पर थोप दिया जाता है। यदि एक निश्चित आयु-वर्ग के बाद, दिव्यांग बच्चों का मत भी उनके लिए बनाई जा रही योजनाओं में लिया जाए तो निश्चित रूप से ऐसे बच्चों में आत्म-निर्धारण और स्वायत्तता के गुणों का विकास होगा।

© NCERT not to be republished

आत्म-निर्धारित व्यक्तिगत शिक्षण योजना

आत्म-निर्धारित व्यक्तिगत योजना में दिव्यांग बच्चे की भूमिका केंद्रीय प्रतिनिधि के रूप में होती है। इसमें दिव्यांग बच्चों को स्वयं अधिगम कार्य का चयन करने, लक्ष्य निर्धारित करने, लक्ष्यों को समायोजित करने तथा उनकी स्वयं की भागीदारी एवं प्रगति के मूल्यांकन के लिए कार्यात्मक योजना तैयार करनी होती है। इसमें दिव्यांग बच्चा स्वयं की रुचियों, क्षमताओं आदि को ध्यान में रखकर अपने लिए विषयों, सीखने का समय, सीखने के लिए कार्यात्मक रूप, स्व-मूल्यांकन इत्यादि का निर्धारण करता है। यह योजना दिव्यांग बच्चों में आंतरिक अभिप्रेरणा को तो विकसित करती ही है, साथ ही साथ अपने लिए लक्ष्य निर्धारित करने, उसे पूरा करने तथा भविष्य में निर्णय लेने की क्षमताओं को भी विकसित करती है, जिसके परिणामस्वरूप दिव्यांग बच्चे भी आत्म-निर्भर बन सकते हैं।

घर के विभिन्न निर्णयों में दिव्यांग बच्चों को भी शामिल करने एवं उनकी इच्छाओं का आदर करने हेतु अभिभावकों के लिए परामर्श

आमतौर पर यह देखा जाता है कि दिव्यांग बच्चों के अभिभावक भी अपने बच्चों से संबंधित सभी निर्णय एकांकी तौर पर लेते हैं, वे इन निर्णयों में बच्चों को किसी भी प्रकार से शामिल नहीं करते हैं, भले ही वह निर्णय बच्चे के भविष्य से जुड़ा हो या फिर किसी भी प्रकार का घरेलू मामला हो। इन बच्चों को इस योग्य नहीं समझा जाता है कि वे खुद के जीवन या खुद की शिक्षा से संबंधित निर्णय ले सकें। ऐसी मनोवृत्तियाँ दिव्यांग बच्चों को आत्मनिर्भर होने में एक बाधा के रूप में सामने आती हैं। अतः अभिभावकों को चाहिए कि वे किसी भी प्रकार के लिए गए निर्णयों में दिव्यांग बच्चों को भी उसी तरह से शामिल करें, जैसे कि सामान्य बच्चों को शामिल किया जाता है। ऐसा करने से दिव्यांग बच्चों में परिस्थितियों के अनुरूप सोचने की क्षमता का विकास होगा, जो उन्हें आत्मनिर्भर बना सकता है।

सारांशतः स्वायत्त कार्य में व्यक्तित्व समर्थन तथा स्व-निर्देशन के अनुभव की आवश्यकता, सक्षम वातावरण में आंतरिक प्रभाव अनुभव करने की आवश्यकता और संबद्धता, किसी अन्य के साथ अर्थपूर्ण संबंध अनुभव करने की आवश्यकता है और ये सभी जैविक आवश्यकताएँ हैं। समावेशी शिक्षा में इन सभी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की ज़रूरत प्रत्येक बच्चे को ही नहीं, वरन् अध्यापक को भी होती है। समावेशी शिक्षा का एक लक्ष्य है— शिक्षा में शामिल सभी बच्चों को आत्मनिर्भर बनाना। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए बच्चे में स्वायत्तता तथा सक्षमता के गुणों का होना आवश्यक है, जिसकी पूर्ति आत्म-निर्धारण कौशल का विकास करके की जा सकती है। आत्म-निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत का समावेशी शिक्षा में उपयोग दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा, व्यक्तिगत शिक्षण योजना के निर्माण, स्व-निर्देशित व्यक्तिगत शिक्षण योजना के निर्माण एवं उनसे संबंधित विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में किया जा सकता है। जो दिव्यांग तथा सामान्य विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन, आत्म-निर्धारण एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि को उन्नत बनाने में सहायक हो

© NCERT not to be republished

सकती है, साथ ही शिक्षा की विभिन्न जटिलताओं को भी बच्चों की आवश्यकतानुसार अनुकूलित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इससे बच्चों में सकारात्मक अभिवृत्ति एवं अन्य व्यावसायिक कौशल सिखाए जा सकते हैं। संबद्धता कौशल बच्चों के सामाजीकरण में प्रभावी हो सकता है। इस प्रकार, आत्म-निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत का उपयोग करते हुए इस पर आधारित तरीकों को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शामिल करना, समावेशी शिक्षा को अत्यंत प्रभावी बनाने में सहायक होगा।

संदर्भ

आग्रान, एम., किंग-सियर्स, विहाईमर और कोपलैंड. 2003. *टीचर्स गाइड टू इन्क्लूसिव प्रेक्टिस— स्टूडेंट-डाईरेक्टेड लर्निंग*. ईरिक. ब्रूकेज, बाल्टीमोर.

ऐम्बिल, टी. एम., डीजोंग और एम. आर. लेपर. 1976. इफ़ैक्ट्स ऑफ़ एक्सटर्नली इम्पोसड डेडलाइन ऑन सबसिक्वेंस इनट्रिन्सिक मोटिवेशन. *जर्नल ऑफ़ पर्सनैलिटी एंड सोशल साइकोलॉजी*. 34(1), पृ. 92.

चिरकोव, वी. आई. 2009. ए क्रोस-कल्चरल एनालिसिस ऑफ़ ऑटोनोमी इन एजुकेशन— ए सेल्फ़-डिटरमिनेशन थ्योरी पर्सपेक्टिव. *थ्योरी एंड रिसर्च इन एजुकेशन*. 7(2), पृ. 253–262. सेज जर्नल.

डेसी, ई. एल. और आर. एम. रयान. 1985. *इन्ट्रीन्सिकमोटिवेशन एंड सेल्फ़-डिटरमिनेशन इन ह्यूमन बिहैवियर*. प्लेनम, न्यूयॉर्क.

नोटा, एस. और अन्य. 2011. ए मल्टीवैरीएट अनालिसिस ऑफ़ द सेल्फ़-डिटरमिनेशन ऑफ़ एडोल्सेंट्स. *जर्नल ऑफ़ हैप्पीनेस स्टडीज़*. 12, पृ. 245–266.

प्लांट, आर. डब्ल्यू. और अन्य. 1985. इनट्रिन्सिक मोटिवेशन एंड द अफ़ैक्ट्स ऑफ़ सेल्फ़-कांसिस्नेस सेल्फ़-अवेयरनेस एंड ईगो-इनवोल्वमेंट— एन इन्वेस्टिगेशन ऑफ़ इंटरनली कंट्रोलिंग स्टाइल्स. *जर्नल ऑफ़ पर्सनैलिटी*. 53(3), पृ. 435–449.

फ़ील्ड, एस. और अन्य. 1998. *ए प्रेक्टिकल गाइड फ़ॉर टीचिंग सेल्फ़-डिटरमिनेशन, काउंसिल फ़ॉर एक्ससेप्शनल चिल्ड्रेन*. रेसटन, यू.एस.ए.

भारत सरकार. 2016. *दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016*. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, नयी दिल्ली.

मैग्यु, जी. ए. और अन्य. 2009. ऑन द डेवलपमेंट ऑफ़ हार्मोनिअस एंड ऑब्सेसिव पैशन— द रोल ऑफ़ ऑटोनोमी सपोर्ट एक्टिविटी स्पेशलाइज़ेशन एंड आइडेंटिफिकेशन विद एक्टिविटी. *जर्नल ऑफ़ पर्सनैलिटी*. 77(3), पृ. 601–646.

रयान, आर. एम. 1982. कंट्रोल एंड इंफ़ोर्मेशन इन द इंट्रापर्सनल स्फ़ेयर— एन एक्सटेंशन ऑफ़ कॉग्निटिव एवैल्यूएशन थ्योरी. *जर्नल ऑफ़ पर्सनैलिटी एंड सोशल साइकोलॉजी*. 43(3), पृ. 450–461.

रयान, आर.एम. और ई. एल. डेसी. 2000. सेल्फ़-डिटरमिनेशन थ्योरी एंड द फ़ैसिलिटेशन ऑफ़ इन्ट्रीसिक मोटिवेशन सोशल डेवलपमेंट एंड वेल बीइंग. *अमेरिकन साइकोलोजिस्ट*. 55(1), पृ. 68.

वंस्टीन्किस्ते, और अन्य. 2004. मोटिवेटिंग लर्निंग परफ़ॉर्मेंस एंड परसिस्टेंट— द साइनरजेस्टिक रोल ऑफ़ इन्ट्रिनसिंक गोल एंड ऑटोनोमी सपोर्ट. *जर्नल ऑफ़ पर्सनैलिटी एंड सोशल साइकोलॉजी*. 87, पृ. 246–260.

© NCERT not to be republished

वेंस्टीन, एन. और अन्य. 2012. द इंडेक्स ऑफ़ ऑटोनोमस फ़ंक्शनिंग— डेवलपमेंट ऑफ़ ए स्केल ऑफ़ ह्यूमन ऑटोनोमी. *जर्नल ऑफ़ ए रिसर्च इन पर्सनैलिटी*. 46(4), पृ. 397–413.

विहाईमर, एम. एल. और अन्य. 2003. द इफ़ैक्ट ऑफ़ सेल्फ़-रेगुलेशन स्ट्रेटजीज़ ऑन गोल अटेन्मेंट फ़ॉर स्टूडेंट्स विद डेवलपमेंटल डिसएबिलिटीज़ इन जनरल एजुकेशन क्लासरूम्स. *जर्नल ऑफ़ डेवलपमेंटल एंड फ़िज़िकल डिसएबिलिटीज़*. 15, पृ. 79–91.

विहाईमर. 2005. सेल्फ़-डिटरमिनेशन एंड इंडीविजुअल्स विद सीवियर डिसएबिलिटीज़— रिएक्ज़ामिनिंग मीनिंग एंड मिसइंटरप्रीटेसनेस. *रिसर्च एंड प्रेक्टिस फ़ॉर पर्सनस विद सीवियर्स डिसेबिलिटीज़*. 30(3), पृ. 113–120.

© NCERT not to be republished